आचार्य सिद्धसेनगणि और तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति

श्रीमती डॉ. अमरा जैन

आचार्य सिद्धसेनगणि श्वेताम्बर जैन परंपरा के मुनि हैं। इनके जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। इन्होंने जैनधर्म के शिरोमणि ग्रन्थ "तत्वार्थसूत्र" पर "तत्वार्थ-भाष्यवृत्ति" लिखी है। इनका अन्य कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

जीवन–परिचय

तत्वार्थभाष्यवृत्ति में प्राप्य अन्य ग्रन्थों के अवतरण तथा जैन तथा जैनेतर विद्वानों के नामोल्लेख से ही सिद्धसेनगणि के जीवन के विषय में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त तत्वार्थभाष्यवृत्ति के अंत में पाए जाने वाले नौ श्लोकों से पता चलता है कि सिद्धसेनगणि भास्वामी के शिष्य थे। भास्वामी सिंहसूरि के शिष्य थे और सिंहसूरि दिन्नगणि क्षामाक्षमण के शिष्य थे।[1] सिद्धसेनगणि आगम-परंपरावादी किसी गुरुवंश से संबन्धित थे, ऐसा उनके अथाह आगम-विश्वास से प्रतीत होता है। क्योंकि सिद्धसेन दिवाकर के अन्यतम तार्किक निष्कर्ष के स्थान पर भी सिद्धसेनगणि आगम-वाक्य को सर्वोपरि मानते हैं।[2] तत्वार्थ-भाष्यवृत्ति के अंत में पाए जाने वाले नौ श्लोकों में से द्वितीय श्लोक में कहा गया है कि दिन्नगणि, जो सिद्धसेनगणि के तृतीय पूर्वज थे, ने अपने शिष्यों के लिए पुस्तक की सहायता के बिना प्रवचन किया। इससे भी प्रतीत होता है कि सिद्धसेनगणि आगम की उस प्राचीन शुरु-शिष्य परंपरा से संबन्ध रखते हैं, जिसमें शिष्य गुरु के चरणों में बैठ कर विद्यार्जन करता था।

प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी ने सिद्धसेनगणि को ही गन्धहस्ती माना है।[3] अतः पं. सुखलालजी के अनुसार सिद्धसेनगणि की दो रचनाएँ हैं एक, तत्वार्थसूत्र पर रचे तत्वार्थभाष्य की उपलब्ध बड़ी वृत्ति, दूसरी आचारांग विवरण, जो, अनुपलब्ध है।[4]

तत्वार्थभाष्यवृत्ति में उज्जयिनी तथा[5] पाटलीपुत्र[6] नामक शहरों का उल्लेख है। संभव है, सिद्धसेनगणि ने इन स्थलों पर विहार किया हो अथवा यहां स्व ग्रंथ रचना की हो।

सिद्धसेनगणि का समय

सिद्धसेनगणि ने तत्वार्थभाष्यवृत्ति में "धर्मकीर्ति" नामक विद्वान् का उल्लेख किया है।[7] धर्मकीर्ति का समय उन सभी विद्वानों, जिनका उल्लेख सिद्धसेनगणि की तत्वार्थभाष्यवृत्ति में है, में अर्वाचीन है। धर्मकीर्ति का समय ईस्वी सातवीं शताब्दी है।[8] अतः सिद्धसेनगणि का समय सातवीं शताब्दी के पश्चात् है।[9]

पं० सुखलालजी के विचार में सिद्धसेनगणि विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम पाद से विक्रम की आठवीं शताब्दी के मध्यकाल

१. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, संपादक हीरालाल रसिकदास कापडिया बम्बई, सन् १९३०, भाग दो, पृ० ३२७–२८

२. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, संपादक हीरालाल रसिकदास कापडिया बम्बई, सन् १९२९, भाग प्रथम पृ० १११ व १५२–१५३।

३. पं० सुखलाल, तत्वार्थसूत्र (हिन्दी) बनारस, सन् १९५२, द्वितीय संस्करण, परिचय, पृ० ४०

४. वही, पृ० ४१

५. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम पृ० २१ ···इतोऽष्टयोजन्यामुज्जयिनी वर्तते···

६ वही पृ० २७··· पाटलिपुत्रगामिभार्गवन्मोक्षमार्ग·····

७. वही पृ० ३९७.... भिक्षुवरधर्मकीर्तिनापि विरोधः उक्त.....

८. वही, भाग दो, प्रस्ता० (अंग्रेजी), पृ० ६४, वाचस्पति गैरेला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, सन् १९६० पृ० ४४२

९. तुलनीय, सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग दो, प्रस्ता० (अंग्रेजी) पृ० ६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में हुए ।[10] आर. विलियम के अनुसार सिद्धसेनगणि का समय ई० आठवीं शताब्दी के आसपास का है ।[11] अतः यह निश्चित ही है कि सिद्धसेनगणि सातवीं-आठवीं शताब्दी में हुए ।

तत्वार्थभाष्यवृत्ति की रचना तत्त्वार्थराजवार्तिक से पूर्व

तत्वार्थसूत्र पर अनेक टीकाएं रची गई हैं । इनमें से कुछ श्वेताम्बर परम्परानुसार रची गई हैं और अन्य दिगम्बर परंपरानुसार । तत्वार्थसूत्र पर स्वोपज्ञभाष्य रचा गया, जिसका रचना-काल दूसरी-तीसरी शताब्दी माना गया है । तत्वार्थसूत्र की एक अन्य टीका पूज्यपाद देवनंदी कृत सर्वार्थसिद्धि है, यह दिगम्बर-परम्परानुसार रची गई है। इसका रचना काल विक्रम की ५-६ शताब्दी है । एक अन्य टीका सिद्धसेनगणि कृत तत्वार्थभाष्यवृत्ति है। यह स्वोपज्ञ-भाष्य पर श्वेताम्बर-परम्परानुसार रची गई है । सिद्धसेनगणि का समय ई. सातवीं-आठवीं शताब्दी है । दिगम्बर-परंपरानुसार रची गई एक अन्य टीका भट्ट अकलंक कृत तत्वार्थराजवार्तिक है । भट्ट अकलंक का समय ईस्वी ७-८ शताब्दी है ।[12] अतः सिद्धसेनगणि तथा अकलंक दोनों समकालीन हैं । परन्तु उनके द्वारा रची गई तत्वार्थसूत्र की टीकाओं में पौर्वापर्य अवश्य होगा । यह विवाद का विषय बना हुआ है कि दोनों (तत्वार्थभाष्यवृत्ति तथा तत्वार्थराजवार्तिक) में से कौन सी टीका पहले रची गई और कौन सी बाद में ।

तत्वार्थराजवार्तिक तथा तत्वार्थभाष्यवृत्ति के आन्तरिक अवलोकन के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थराजवार्तिक से पहले रची गई । इस मत का समर्थन चार-चार आधारों से किया जा सकता है। प्रथम-सूत्रपाठ का खण्डन, द्वितीय-शैली, तृतीय- विषय विकास, चतुर्थ-परम्परा-विशेष के मत का स्थापन करने की प्रवृत्ति ।

सूत्रपाठ का खण्डन

तत्वार्थसूत्र ३.१ पर रची राजवार्तिक में अकलंक ने श्वेताम्बर परम्परा मान्य सूत्रपाठ--"सप्ताधोऽधः पृथुतराः" का उल्लेख किया है। यही सूत्रपाठ तत्वार्थभाष्य तथा तत्वार्थभाष्यवृत्ति में मिलता है । अकलंक ने इसी सूत्रपाठ को तर्कबल से असंगत कहा है।[13] इसी प्रकार तत्वार्थसूत्र ४.८ की राजवार्तिक में अकलंक ने श्वेताम्बर-परम्परा मान्य सूत्रपाठ को अनुपयुक्त बतलाया[14] है । ऐसा प्रतीत होता है कि तत्वार्थराजवार्तिक रचते हुए अकलंक के सम्मुख तत्वार्थभाष्य तो था ही पर तत्वार्थभाष्य के अतिरिक्त ऐसी कोई महती टीका भी थी,[15] जिसमें प्राप्य सूत्रपाठ का अकलंक ने केवल खण्डन ही नहीं किया है अपितु स्व-परम्परा-मान्य सूत्रपाठ की महत्ता बताने के लिए अकलंक को तर्क-बल से उस सूत्रपाठ का निराकरण करने की आवश्यकता भी जान पड़ी । इसके स्थान पर तत्वार्थभाष्यवृत्ति में सिद्धसेनगणि द्वारा किया गया दिगम्बर-परम्परामान्य सूत्रपाठों का खण्डन अपेक्षाकृत कम प्रबल है, हालांकि सिद्धसेनगणि ने तत्वार्थभाष्यवृत्ति जिसका रचनाकाल तत्वार्थभाष्य के पश्चात् है तथा जो श्वेताम्बर परम्परा में विद्वद्-कार्य मानी जाती है, में तत्वार्थसूत्र पाठों के पाठान्तर तथा उनके विषय में कहे गए अन्य विद्वानों के मत कहे हैं । इसका तात्पर्य है कि सिद्धसेनगणि के समय में तत्वार्थसूत्र के विभिन्न पाठ उपलब्ध थे परन्तु दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्परानुसार सूत्रपाठ का विवाद इतना प्रबल नहीं था जितना अकलंक द्वारा तत्वार्थराजवार्तिक रचते समय था । अतः स्वपरम्परामान्य सूत्रपाठ की सुरक्षा के लिए अकलंक को दिगम्बर परम्परा विरोधी तथा श्वेताम्बर परम्परानुसार सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति में पाए जाने वाले सूत्रपाठों का खण्डन करना पड़ा ।

श्वेताम्बर परम्परा मान्य तत्वार्थसूत्र के पंचम अध्याय में एक सूत्र है "द्रव्याणि जीवाश्च" दिगम्बर टीकाकार पूज्यपाद (विक्रम ५–६ सदी) ने इस सूत्र को "द्रव्याणि" तथा "जीवाश्च" दो सूत्रों में कहा है ।[16] सिद्धसेनगणि ने उक्त सूत्र को दो सूत्रों में विभाजन को अयुक्त बताया है ।[17] परन्तु अकलंक 'तत्वार्थवार्तिकार' ने "द्रव्याणि" तथा "जीवाश्च" इन दोनों सूत्रपाठों को युक्त कहा है तथा तर्कबल से इन दोनों सूत्रपाठों की सिद्धि की है ।[18] इससे निष्कर्ष निकलता है कि तत्वार्थभाष्य (२–३ सदी) में कथित एक सूत्र का दो सूत्रपाठों में विभाजन पूज्यपाद देवानन्दी (५–६ सदी) सर्वार्थसिद्धिकार को मान्य है । सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्तिकार ने सर्वार्थसिद्धि में कथित दोनों सूत्रपाठों का उल्लेख किया है तथा सूत्र के इस प्रकार के विभाजन को असिद्ध कहा है,[19] उसी के प्रत्युत्तर में अकलंक को विस्तार से सिद्ध करना पड़ा कि एक सूत्र "द्रव्याणि जीवाश्च" कहने से केवल जीव ही द्रव्य कहे जायेंगे, अजीव नहीं । अधिकार रहने पर जब तक इस प्रकार का प्रयत्न न किया जाय तब तक अजीवों में द्रव्यरूपता नहीं बन सकती । अतः पृथक् सूत्र बनाना उचित है ।[20] इस विवाद से निष्कर्ष

१०. पं० सुखलाल, तत्वार्थसूत्र (हिन्दी), परिचय पृ० ४२
११. आर० विलियम, जैन योग, लन्दन सन् १९६२, पृ० ७
१२. विस्तार के लिये देखिये--अनन्तवीर्य, सिद्धिविनिश्चय टीका संपादक डा० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य, काशी, सन् १९५९, भाग प्रथम पृ०४४-५५
१३. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक, भाग प्रथम संपादक पं० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य काशी, सन् १९५३, पृ० १६१
१४. वही, पृ० २१५
१५. सिद्धसेनगणि कृत तत्वार्थभाष्यवृत्ति ही इस रूप में उपलब्ध है।
१६. पूज्यपाद देवनंदी, सर्वार्थसिद्धि, संपादक पं. फूलचन्द सिद्धांत-शास्त्री काशी सन् १९५५ प्रथम संस्करण पृ० २६६-२६८
१७. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ० ३२०
१८. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक, भाग दो संपादक पं. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य काशी, सन् १९५७ पृ० ४४२-४४३
१९. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति भाग प्रथम, पृ० ३२०
२०. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक भाग २, पृ० ४४२-४४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकला कि पूज्यपाद सिद्धसेनगणि से पूर्ववर्ती हैं और सिद्धसेनगणिकृत तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थराजवार्तिक से पूर्व रची गई।

तत्वार्थसूत्र ६–१८ की तत्वार्थराजवार्तिक टीका में कहा गया है "स्यान्मतम् एकोयोगःकर्त्तव्यः" अल्पारंभपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवं मानुषस्य इति, तन्न, किं कारणम् ? उत्तरापेक्षत्वात् । देवस्यायुषः कथमयमास्रव स्यादिति पृथक्करणम्[21] अर्थात् स्वभावमार्दव का निर्देश पूर्ववर्ती सूत्र ६–१७ "अल्पारंभ" द्वारा करना युक्त नहीं है क्योंकि इस सूत्र ६–१८ "स्वभावमार्दवम् च" का संबन्ध आगे बताए जाने वाले देवायु के आस्रवों से भी करना है। जिस सूत्रपाठ का खंडन अकलंक ने यहां किया है, वह सूत्रपाठ तत्वार्थभाष्य तथा तत्वार्थभाष्यवृत्ति[22] में उपलब्ध है। इससे यह प्रतीत होता है कि तत्वार्थभाष्य तत्वार्थवार्तिकार के सम्मुख था ही, साथ में तत्वार्थभाष्यवृत्ति भी उनके समक्ष थी, यह निष्कर्ष दो कारणों से जान पड़ता है, प्रथम यदि यह मान लिया जाय कि तत्वार्थराजवार्तिक से पहले केवल तत्वार्थभाष्य था और उसके आधार पर ही अकलंक ने उपरोक्त सूत्रपाठ को अयुक्त कहा है तथा सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थराजवार्तिक के पश्चात् लिखी गई, ये दोनों विचार संशयात्मक प्रतीत होते हैं। क्योंकि यदि तत्वार्थभाष्यवृत्ति से पूर्व तत्वार्थभाष्य मान्य सूत्रपाठ का खंडन पाया जाता तो सिद्धसेनगणि स्वसाम्प्रदायिक भावनावश स्वपरम्परामान्य सूत्रपाठ को ही युक्त ठहराते तथा दिगम्बर परम्परामान्य सूत्रपाठ को अयुक्त बताते, पर सिद्धसेनगणि ने त. सू. ६–१८ की भाष्यवृत्ति में किसी अन्य सूत्रपाठ का उल्लेख तक नहीं किया है। द्वितीय, सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थसूत्र पर एक महती टीका मानी जाती है, श्वेताम्बर परम्परा में यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है, अतः तत्वार्थराजवार्तिक के रचयिता अकलंक, जो स्वपरम्परामान्य मत-स्थापना के पोषक हैं, ने सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति में उपरोक्त विरोध देखा, उसका खंडन किया और दिगंबर परम्परामान्य सूत्रपाठ के युक्त होने के कारण कहे। अतः स्पष्ट है कि सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति की रचना तत्वार्थराजवार्तिक से पूर्व हुई।

शैली

"आकाश प्रधान का विकार है"[23] सांख्य दर्शन के इस सिद्धान्त का खंडन सिद्धसेनगणि तथा अकलंक दोनों ने स्व-स्वटीकाओं में किया है। पर दोनों के खण्डन करने के ढंग में अन्तर है। अकलंक[24] द्वारा किया गया खण्डन सिद्धसेनगणि[25] द्वारा किये गये खण्डन-कार्य की अपेक्षा स्पष्टतर है। इससे अकलंक की रचना शैली की उत्कृष्टता तथा परिपक्वता का पता चलता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि अकलंक से पूर्व भी इस प्रकार का खण्डन-विषय प्राप्य था और अकलंक ने उसी के आधार पर अपनी विद्वत्ता द्वारा उसे उत्कृष्ट रूप दिया है। अतः शैली की उत्कृष्टता की दृष्टि से भी तत्वार्थराजवार्तिक तत्वार्थभाष्यवृत्ति से परवर्ती है।

सिद्धसेनगणि स्वकथन की पुष्टि के लिये अधिकतर आगम अथवा तत्वार्थसूत्र ही उद्धृत करते हैं पर तत्वार्थराजवार्तिक में अकलंक ने तत्वार्थसूत्र के अतिरिक्त जैनेन्द्र व्याकरण, योगभाष्य, मीमांसादर्शन, युक्त्यनुशासन, ध्यानप्राभृत आदि जैन तथा जैनेतर ग्रन्थ उद्धृत किये हैं और परमतों का उल्लेख कर उनका खण्डन किया है। स्वमत समर्थन के लिये अधिक से अधिक उद्धरण देना तथा परमत को कह उसका खण्डन करना, इस प्रकार की प्रवृत्ति की तभी आवश्यकता अनुभव होती है जब स्वमत विरोधी कथन मिलते हों अथवा स्वमत के सिद्धान्तों के खण्डन का भय हो। ऐसी प्रवृत्ति के दर्शन तत्वार्थभाष्यवृत्ति की अपेक्षा तत्वार्थराजवार्तिक में अधिक हैं। अतः तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थराजवार्तिक से पूर्ववर्ती है।

पूज्यपाद[26] तथा सिद्धसेनगणि[27] ने तत्वार्थसूत्र ६–१४ आगत "उदय" शब्द का अर्थ "विपाक" किया है। परन्तु "अकलंक"[28] तथा विद्यानन्द[29] (१० वीं सदी) तत्वार्थश्लोकवार्तिककार ने "उदय" शब्द की विस्तृत व्याख्या की है। इसी प्रकार का इसी अध्याय में एक अन्य स्थल है[30] जहां दोनों सिद्धसेनगणि तथा अकलंक स्व-स्व टीकाओं में आस्रव के अधिकारी बताते हुए कहते हैं कि उपशान्त क्षीणकषाय के ईर्यापथ आस्रव है। सिद्धसेनगणि आगे कहते हैं कि केवली के ईर्यापथ आस्रव है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सांपरायिक आस्रव हैं।[31] पर यहां अकलंक का कथन स्पष्टतर तथा विस्तृत है जब वे केवली के साथ "सयोग" पद भी जोड़ते हैं अर्थात् सयोगकेवली के ईर्यापथ आस्रव हैं। अकलंक सांपरायिक आस्रव के स्थान के विषय में बताते है कि सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान तक सांपरायिक आस्रव है।[32] इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि सिद्धसेनगणि की अपेक्षा अकलंक विस्तृत वर्णन में विश्वास रखते हैं। अकलंक की इस

२१. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक भाग २, पृ० ५२६
२२. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग दो, पृ० ३०
२३. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका ३-२२
२४. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक, भाग दो, पृ० ४६८
२५. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. ३४०
२६. पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि, पृ. ३३२, उदयो विपाकः।
२७. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग २ पृ. २९ उदयोविपाकः ।
२८. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक, भाग दो, पृ. ५२४, प्रागुपात्तस्य कर्मणः द्रव्यादि निमित्तवशात् फलप्राप्तिः परिपाक उदय इति निश्चीयते।
२९. विद्यानन्द, तत्वार्थश्लोकवार्तिक, भाग छः सोलापुर, सन् १९६६, पृ. ५१३
३०. तत्वार्थसूत्र ६-५
३१. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग दो, पृ. ९
३२. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक, भाग दो, पृ. ५०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैली के दर्शन परवर्ती आचार्य विद्यानन्द की तत्वार्थश्लोक-वार्तिक में होते हैं न कि पूर्ववर्ती आचार्य पूज्यपाद की सर्वार्थ-सिद्धि में । अतः स्पष्ट है कि तत्वार्थभाष्यवृत्ति, यह निश्चित है कि जिसका रचनाकाल सर्वार्थसिद्धि के पश्चात् है, तत्वार्थ-राजवार्तिक से पूर्व ही रची गई ।

विषय-विकास

अकलंक ने तत्वार्थसूत्र ४–४१ की तत्वार्थराजवार्तिक में सात वार्तिकों द्वारा जिस विषय को कहा है, वही विषय तत्वा-र्थभाष्य तथा तत्वार्थभाष्यवृत्ति में सूत्ररूप में उपलब्ध है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि पूज्यपाद ने तत्वार्थभाष्य में कहे गए इन सूत्रों को सूत्र रूप में सर्वार्थसिद्धि में क्यों नहीं कहा है ? संभवतः पूज्यपाद को ये सूत्र अनावश्यक प्रतीत हुए हों। अतः संभव है कि तत्वार्थराजवार्तिक की रचना से पूर्व तत्वार्थभाष्य पर वृत्ति लिखी जा चुकी थी तथा वे सूत्र, जो तत्वार्थभाष्य में सूत्र रूप में उपलब्ध हैं, भी (किसी संप्रदाय विशेष में मान्य) तत्वार्थसूत्र में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुके थे, अतः तत्वार्थराजवार्तिककार के लिये असंभव हो गया था कि पूज्य-पाद की भांति (किसी परंपरा में मान्यता प्राप्त) उन सूत्रों का उल्लेख ही न करते । इसके साथ ही सर्वार्थसिद्धि मान्य सूत्र-पाठ का अनुसरण करने वाले तत्वार्थराजवार्तिककार के लिये तत्वार्थभाष्य तथा तत्वार्थभाष्य मान्य सूत्रों का तत्रूप में ग्रहण करना भी आवश्यक था । अतः अकलंक ने उन सूत्रों का वार्तिक रूप में तत्वार्थराजवार्तिक में समावेश कर लिया। इस विवरण से प्रतीत होता है कि तत्वार्थभाष्यवृत्ति की रचना तत्वार्थराज-वार्तिक से पूर्व हुई ।

परम्परा-विशेष के मत का स्थापन करने की प्रवृत्ति

तत्वार्थसूत्र ८–१ की तत्वार्थराजवार्तिक में अकलंक ने कहा है––"केवली कवलाहारी है, स्त्री मुक्ति हो सकती है, सपरिग्रही भी निर्ग्रन्थ हो सकता है आदि विपरीत मिथ्यात्व है ।[33]" अकलंक का यह विचार श्वेताम्बर मान्यता के विरुद्ध है क्योंकि श्वेताम्बर के आगमानुसार स्त्रीमुक्ति आदि हो सकती है । यह सर्वमान्य है कि तत्वार्थभाष्यवृत्ति श्वेतांबर परंपरानुकूल लिखी गई है, पर प्रस्तुत प्रसंग में अकलंक के कथन का खंडन तत्वार्थभाष्यवृत्ति में नहीं है । यदि तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थ-राजवार्तिक के पश्चात् लिखी जाती तो उसमें उपरोक्त कथन, जो तत्वार्थराजवार्तिक में है, का निराकरण सिद्धसेनगणि अवश्य करते क्योंकि तत्वार्थभाष्यवृत्ति का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि सिद्धसेनगणि का आगम विरोधी कथन, चाहे कितना ही तर्कसंगत क्यों न हो, अमान्य है। अतः तत्वार्थराजवार्तिक में उप-लब्ध उपरलिखित कथन, जो श्वेतांबर आगम-विरोधी है, का निरसन सिद्धसेनगणि अवश्य करते, यदि उनके संमुख तत्वार्थ-राजवार्तिक होता ।

३३. अकलंक, तत्वार्थवार्तिक, भाग दो, पृ. ५६४

उपरलिखित सभी तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थराजवार्तिक से पूर्व रची गई ।

किन्हीं विद्वानों का मत है कि तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थ-राजवार्तिक के पश्चात् रची गई क्योंकि "सिद्धिविनिश्चय" जो संभवतः तत्वार्थराजवार्तिककार अकलंक की रचना है,[34] का उल्लेख तत्वार्थभाष्यवृत्ति में मिलता है ।[35] इस मत का विरोध प्रो. हीरालाल रसिकदास कापडिया ने किया है । उनके विचारानुसार सिद्धिविनिश्चय, जिस पर अनन्तवीर्य द्वारा लिखी गई टीका उपलब्ध है, तत्वार्थराजवार्तिककार अकलंक की रचना मानना असंभव है ।[36] यदि यह निश्चित भी हो जाय, जैसा कि पं. सुखलालजी का विचार है,[37] कि सिद्धिविनिश्चय तत्वार्थराजवार्तिककार अकलंक की कृति है तब भी यह मानना आवश्यक नहीं कि तत्वार्थराजवार्तिक तत्वार्थभाष्यवृत्ति से पूर्व ही रची गई। यह कहा जा चुका है कि अकलंक तथा सिद्ध-सेनगणि समकालीन हैं । जैन लक्षणावली में भी अकलंक तथा सिद्धसेनगणि का समय क्रमशः विक्रम की ८-९ वीं शती ९वीं शती कहा गया है ।[38] पं. सुखलालजी ने इनका समय विक्रम की सातवीं-आठवीं शताब्दी माना है ।[39] दोनों विद्वानों के मत को पृथक्-पृथक् मानने पर भी अकलंक तथा सिद्धसेनगणि की समकालीनता सिद्ध होती है । पर दोनों लेखकों द्वारा रचे गये ग्रंथों में तो पौर्वापर्य तो होगा ही, चाहे वह अन्तर केवल दस-पन्द्रह वर्ष का ही हो । अतः संभव है कि अकलंक ने तत्वार्थराजवार्तिक रचने से पहले ही सिद्धिविनिश्चय रच लिया हो और उसी का उल्लेख सिद्धसेनगणि ने तत्वार्थभाष्यवृत्ति में किया हो। इसी आधार पर यह भी संभव है कि तत्वार्थ-भाष्यवृत्ति की रचना तत्वार्थराजवार्तिक से पूर्व हुई हो । सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति तथा तत्वार्थराजवार्तिक की अन्तःपरीक्षा से भी यही सिद्ध होता है कि तत्वार्थराजवार्तिक रचते समय भट्ट अकलंक के सम्मुख सिद्धसेनगणीय तत्वार्थ-भाष्यवृत्ति थी, जिसका अकलंक ने तत्वार्थराजवार्तिक में उपयोग किया है ।

रचना-शैली

तत्वार्थभाष्यवृत्ति तत्वार्थसूत्र के भाष्य पर रची गई है ।

३४. भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा रचित दो सिद्धिविनिश्चय मिलते हैं।

३५. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. ३७

३६. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति. भाग दो, प्रस्ता (अंग्रेजी) पृ. ६३ टिप्पणी ६

३७. पं. सुखलालजी, तत्वार्थसूत्र (हिन्दी) परिचय, पृ. ४२

३८. पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री द्वारा संपादित, जैन लक्षणावली, भाग प्रथम, दिल्ली, सन् १९७२ ग्रंथकारानुक्रमणिका, पृ.१७ तथा १९

३९. पं. सुखलाल, तत्वार्थसूत्र (हिन्दी) परिचय, पृ. ४२ तथा ४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में लिखित "भाष्यानुसारी"[40] पद उचित है क्योंकि इसमें तत्वार्थभाष्य के लगभग प्रत्येक पद का विवेचन किया गया है। उदाहरणार्थ, तत्वार्थसूत्र १–४ पर रचित भाष्य के प्रत्येक शब्द पर सिद्धसेनगणि ने टीका रची है।[41]

सिद्धसेनगणीय तत्वार्थभाष्यवृत्ति का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि सिद्धसेनगणि की भाषा शास्त्रीय है[42] परन्तु कहीं-कहीं इनकी भाषा ललितमयी भी है। इसका उदाहरण सिद्धसेनगणि द्वारा किया गया षड्ऋतु वर्णन है।[43] इस वर्णन को पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि यह किसी दर्शन-शास्त्र का अंश न हो कर किसी काव्यग्रंथ का टुकड़ा है।

उदाहरणार्थ

तथा वर्षासु—सौदामनीवलयविद्योतितोदराभिनवजलधर-पटलस्थगितमम्बरमारचित्तपाकशासनचापलेखमासारथाराप्रपातशमितधूलिजालं च विश्वंभरामण्डलम्, अङ्गसुखाः समीराः कदंबकेतकरजः परिमलसुरभयः, स्फुरदिन्द्रगोपकप्रकरशोभिता शाद्बलवती भूमिः, कूलङ्कषजलाः सरितः, विकासिकुटजप्रसूनकन्दलीशिलीन्ध्रभूषिताः पर्वतोपत्यकाः, पयोदनादाकर्णनोपजाततीव्रोत्कण्ठाः परिमुषितमनीषा इव, पवासिनः, चातकशिखण्डिमण्डलमण्डूकध्वनिविषवेगमोहिताः पथिकजायाः, क्षणं क्षणद्युति दीपिकाप्रकाशिताशामुखासु क्षणदासु परिभ्रमत्खद्योतकीटाकासु सञ्चरन्ति मसृणमभिसारिकाः, षड्कबहुलाः पन्थानः क्वचिज्जलाकुलाः क्वचिदविरलवारिधारा–द्योतहारिसेकताः नमोनभस्ययोमसियोः।[44]

सिद्धसेनगणि की एक अन्य विशेषता है कि वह स्वकथन का स्पष्टीकरण दृष्टान्त देकर करते हैं। यथा, तत्वार्थसूत्र २–३७ की भाष्यवृत्ति में तेजोलेश्या के विषय में कहा गया है। तेजोलेश्या का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह बताने के लिये सिद्धसेनगणि ने जैन इतिहास से गौशाला का दृष्टान्त दिया है, जिसने भगवान महावीर पर तेजो लेश्या छोड़ी थी।[45] सिद्धसेनगणि की इस प्रवृत्ति के द्योतक अनेक स्थल तत्वार्थभाष्यवृत्ति में है।[46]

सिद्धसेनगणि ने तत्वार्थभाष्यवृत्ति गद्य में रची है, पर इन्होंने किन्हीं श्लोकों की रचना भी की है। तत्वार्थसूत्र १०–७ की भाष्यवृत्ति में सिद्धसेनगणि ने आर्या छंद में सात श्लोक रचे हैं। तत्वार्थभाष्यवृत्ति के अन्त में पाए जाने वाले सात श्लोक शार्दूलविक्रीड़ित तथा आर्या छंद में हैं।

४०. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. १३५, २२७ २७०, ३१४, भाग दो, पृ. ४०, १२०, १७९, २९२, ३२७,
४१. वही, भाग प्रथम, पृ. ४१-४३
४२. वही, पृ. ३९७, भाग दो, पृ. २२५
४३. वही, भाग प्रथम, पृ. ३५०-३५२
४४. वही, भाग प्रथम पृ. ३५१-३५२
४५. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. १९५
४६. वही, पृ. ३७९, भाग दो, पृ. ७१, २४१

सिद्धसेनगणि ने उपमा अलंकार का तत्वार्थभाष्यवृत्ति में प्रचुर उपयोग किया है।[47]

व्याकरण-ज्ञाता

सिद्धसेनगणि व्याकरण-ज्ञाता हैं। वह सूत्र तथा सूत्रगत शब्दों के समास,[48] सूत्रगत शब्दों की सिद्धि,[49] सूत्रगत शब्दों में प्रयुक्त विभक्ति का तात्पर्य[50] तथा सूत्रगत शब्द में प्रयुक्त प्रत्यय का विभक्त्यर्थ[50अ] बताते हैं।

सिद्धसेनगणि सूत्रगत शब्दों की व्युत्पत्ति भी करते हैं। उदाहरणार्थ, तत्वार्थसूत्र ५–१ आगत "पुद्गल" पद की विभिन्न व्युत्पत्तियां सिद्धसेनगणि ने कही हैं:—

पूरणात् गलनात् च पुद्गलः।[51]
पुरुषं वा गिलन्ति पुरुषेण वा गीर्यन्ते इति पुद्गलाः।[52]
पुरुषेणादीयन्ते कषाययोगभाजा कर्मतयेति पुद्गलाः।[53]

अनेकानेक शब्दों की व्युत्पत्ति सिद्धसेनगणि ने तत्वार्थभाष्यवृत्ति में की है।[54] सिद्धसेनगणि ने पाणिनि रचित अष्टाध्यायी का उपयोग तत्वार्थभाष्यवृत्ति में यत्र-तत्र किया है।[55]

विद्वत्ता

सिद्धसेनगणि प्रकांड विद्वान हैं। उनका आगम अध्ययन गहन है। संपूर्ण तत्वार्थभाष्यवृत्ति आगम-उद्धरणों से भरी पड़ी है। जिस किसी तथ्य को सिद्धसेनगणि कहना चाहते हैं, उसके समरूप आगम उद्धृत करना, सिद्धसेनगणि का स्वभाव है। आगमों के अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थों का भी उपयोग तत्वार्थ-भाष्यवृत्ति में किया गया है। प्रज्ञापना सूत्र, भगवतीसूत्र, दशवैकालिक सूत्र, आचारांगसूत्र, नन्दीसूत्र, प्रशमरति, सन्मतितर्क आदि अनेक ग्रन्थों के अवतरण भाष्यवृत्ति में मिलते हैं।

४७. वही, भाग प्रथम, पृ. ५२, ५५, ७७, ९२, ९४, ११५, १८०, २०८, ३३१, ३५१, ३५२, ३६३, ३९७ भाग दो, पृ. १३४
४८. वही, भाग प्रथम पृ. १४१, १४५, १७५ भाग दो पृ. २, १६, २४९
४९. वही, भाग प्रथम, पृ. ३०, भाग दो, पृ. ६४, १८१, १८६, २२४, २३३, २५६,
५०. वही, भाग प्रथम, पृ. ४२२
५०-अ वही भाग दो, पृ. १७५
५१. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. ३१६
५२. वही
५३. वही
५४. वही, भाग प्रथम, पृ. १९८, ३२९, भाग दो, पृ. ३९, ८३, ९१, १८१, २३३, २५६, २५९, ३१० आदि
५५. वही, भाग प्रथम, पृ. ११०-१११, ११७, १३१, ३४९, ४२२, ४३२,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनेतर दर्शन का ज्ञान

सिद्धसेनगणि भारतीय दर्शनों के अध्येता हैं। सिद्धसेनगणि ने सौत्रान्तिक,[56] वैशेषिक,[57] सांख्य[58] आदि मतों के अनेक सिद्धान्तों का खण्डन-कार्य में उपयोग किया है। जैनेतर आचार्य शबर,[59] कणाद,[60] दत्ततभिक्षु,[61] धर्मकीर्ति,[62] दिग्नाग,[63] कपिल,[64] आदि का नामोल्लेख तथा इनमें से किन्हीं आचार्यों के मतों को पूर्वपक्ष रूप में तत्वार्थभाष्यवृत्ति में कहा है।

गणितज्ञ

सिद्धसेनगणि गणित में भी निपुण हैं। तत्वार्थसूत्र ३–११ की भाष्यवृत्ति उनके गणित ज्ञान का सुन्दर उदाहरण हैं।[65] त.सू. ३–९ की भाष्यवृत्ति में सिद्धसेनगणि ने तत्वार्थभाष्यकार के गणित-ज्ञान को भी नकारा हैं।[66]

आगमिक प्रवृत्ति

सिद्धसेनगणि तत्वार्थभाष्यवृत्ति में दार्शनिक तथा तार्किक चर्चा करते हुए भी अन्त आगमिक परंपरा का ही पोषण करते हैं। उनकी तत्वार्थभाष्यवृत्ति भाष्यानुसारी है, भाष्यगत प्रत्येक शब्द की विवेचना तत्वार्थभाष्यवृत्ति में की गई है। तदपि तत्वार्थभाष्य का जो वाक्य आगम विरुद्ध जाता है अथवा उसका भाव आगम में नहीं मिलता है तो सिद्धसेनगणि स्पष्टतया कहते हैं कि अमुक कथन आगमविरोधी है अथवा आगम में उसकी लेशमात्र सूचना है, और अन्त में वह आगमिक परंपरा का ही समर्थन करते हैं। यथा, तत्वार्थसूत्र ३–३ के भाष्य में नारकियों के शरीर की ऊंचाई बताई गई है।[67] सिद्धसेनगणि उसी प्रसंग में कहते हैं—"भाष्यकार द्वारा कही गई नारकियों के शरीर की अवगाहना मैंने किसी आगम में नहीं देखी है।[68] तत्वार्थसूत्र ४–२६ के भाष्य में तत्वार्थभाष्यकार ने लोकान्तिक देवों के आठ भेद कहे हैं। परन्तु सिद्धसेनगणि के अनुसार लोकान्तिक देव के नौ भेद हैं। क्योंकि आगम में भी नौ भेद ही कहे गए हैं।[69] सिद्धसेनगणि की आगमिक प्रवृत्ति के परिचायक अनेकानेक स्थल तत्वार्थभाष्यवृत्ति में हैं।[70]

संक्षेप में, सिद्धसेनगणि श्वेताम्बर आगम-परंपरा के समर्थक, भारतीय दर्शनों के ज्ञाता, द्वादशांगी के विशिष्ट अध्येता, गणित-शास्त्र में निपुण तथा इतिहासज्ञ हैं।

---

५६. वही, भाग प्रथम, पृ. ३५४
५७. वही, पृ. ३७६
५८. वही, पृ. ८८, भाग दो, पृ. ६७, १००
५९. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. ३६०
६०. वही, पृ. ३५९, भाग दो, पृ. १००
६१. वही, भाग प्रथम, पृ ३५७
६२. वही, पृ. ३८८, ३९७
६३. वही, पृ. ३९७
६४. वही, पृ. ३२
६५. वही, पृ. २५८-२६०
६६. वही, पृ. २५२-एषा च परिहाणिराचार्योक्ता न मनागपि गणितप्रक्रिया सङ्गच्छन्ते, गणितशास्त्रविदो हि परिहाणि-मन्यथा वर्णयन्त्यार्षनिसारिणः।
६७. उमास्वामी, तत्वार्थाधिगमभाष्य, बम्बई, सन् १९३२, पृ. १४५
६८. सिद्धसेनगणि, तत्वार्थभाष्यवृत्ति, भाग प्रथम, पृ. २४० उक्तमतिदेशतो भाष्यकारेणास्ति चैतत् न तु मया क्वचिदागमे दृष्टं प्रतरादिभेदेन नारकाणाम् शरीरावगाहनमिति।
६९. वही, पृ. ३०७-भाष्यकृता चाष्टाइति मुद्रिता। नन्वेवमेते नवभेदाः सन्ति–आगमे तुनवच्यैवाधीताइति।
७०. वही, पृ० ७१, १३८, १३९, १५३, १५४, १८४, २६९, २६६, २८३

'जो विद्वत्ता ईर्ष्या, कलह, उद्वेग उत्पन्न करने वाली है, वह विद्वत्ता नहीं, महान् अज्ञानता है; इसलिये जिस विद्वत्ता से आत्म कल्याण हो, उस विद्वत्ता को प्राप्त करने में सदा अप्रमत्त रहना चाहिये।'

—राजेन्द्र सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org